दैनिक भास्कर

Date:30-03-24

देश के अन्नदाता कैसे मजदूर बनते जा रहे हैं?

संपादकीय

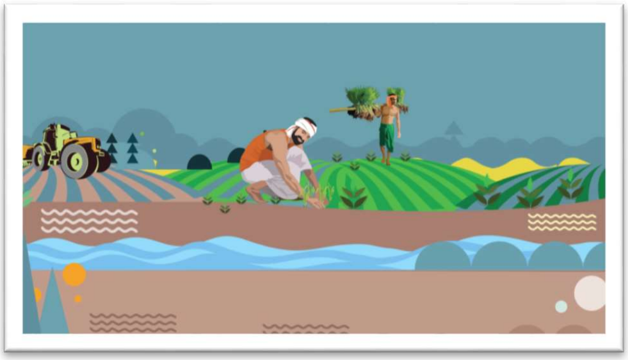

आजादी मिली तो देश के कुल श्रम बल का 70 फीसदी मजदूर कृषि क्षेत्र में था, लेकिन जीडीपी में कृषि का योगदान 54 प्रतिशत था । राजनीतिक वर्ग ने किसानों को अन्नदाता तो कहना शुरू किया लेकिन उसके कल्याण की अनदेखी होती रही क्योंकि अनाज के दाम बढ़ना महंगाई यानी सरकार की विफलता मानी गई जो वोट की राजनीति के लिए अच्छी नहीं थी। नतीजतन 70 साल बाद भी कुल श्रम-बल का 45% खेती से आजीविका पाता है, लेकिन कृषि का योगदान जीडीपी में घटकर 17-18 प्रतिशत रह गया। ओईसीडी के आंकड़े के अनुसार दुनिया के तमाम देश खासकर चीन, अमेरिका और यूरोपियन यूनियन 'उत्पादक सुरक्षा' के नाम पर अपने किसानों को जीडीपी के प्रतिशत का बड़ा हिस्सा देते हैं। 70 साल पहले देश में लगभग 72% खेतिहर होते थे और बाकी खेत मजदूर खेती अलाभकारी होने की वजह से वर्ष 2011 तक इनमें से हर तीसरा किसान खेती छोड़कर खेत मजदूर बन गया। वर्ष 2011 की जनगणना और वर्ष के एसएएस के आंकड़ों की तुलना की जाए तो पिछले 12 वर्षों में किसानों की खेती में लागत बढ़ती गई जबकि उनकी फसलों के दाम उस अनुपात में कम होते गए, कर्ज बढ़ता गया। किसान खेती छोड़ देगा तो अंततः पूंजीपति ही खेती करेंगे लेकिन सरकार की चिंता होनी चाहिए कि फिर ये किसान कहां जाएंगे।

Date:30-03-24

सनातन धर्म में असहमतियों के लिए भी जगह रहती है

पवन के. वर्मा, (लेखक,राजनयिक पूर्व राज्यसभा सांसद)

'शास्त्रार्थ' या सभ्य-संवाद की भारतीय परंपरा में मेरा दृढ़ विश्वास है। प्रस्थानत्रयी कहलाने वाले हिंदू धर्म के मूलभूत ग्रंथ उपनिषद् भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र- संवाद- शैली में ही हैं। वे विपरीत मत को भी स्वीकार करते हैं। 8वीं शताब्दी में

आदि शंकराचार्य और मंडन मिश्र के बीच प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ था। 12वीं सदी में, बिज्जला द्वितीय के कलचुरी साम्राज्य में लिंगायत मत के संस्थापकों - बासवन्ना और अल्लामा प्रभु द्वारा स्थापित 'अनुभव मंडप' ऐसा मंच था, जहां सभी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों के लोग आकर आध्यात्मिक प्रश्नों या सार्वजनिक महत्व के किसी भी मसले पर चर्चा कर सकते थे।

शास्त्रार्थ की इसी भावना के साथ मैं विभिन्न सार्वजनिक बहसों में भाग लेता हूं। हाल ही में इंडिया टुडे और सीएनएन न्यूज 18 कॉन्क्लेव में मुझे ऐसे ही दो अवसर मिले। इंडिया टुडे के कार्यक्रम में एक वक्ता ने आशंका जताई कि भारत तेजी से 'लोकतांत्रिक तानाशाही' में बदलता जा रहा है, जहां ताकतवर राज्यसत्ता अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करते हुए स्वतंत्रता और लोकतंत्र को खतरे में डाल दे रही है। इसके जवाब में मैंने कहा कि नागरिकों को लोकतंत्र पर आसन्न खतरों के प्रति हमेशा सतर्क रहना चाहिए, लेकिन हमारे देश में लोकतंत्र कभी खत्म नहीं होगा, चाहे राज्यसत्ता कितनी भी निरंकुश क्यों न बन जाए। कारण, नागरिकों के समर्थन को कभी हल्के में नहीं लिया जा सकता, न ही उनकी शक्ति को कम करके आंका जा सकता है। देश के नागरिक विगत 75 वर्षों से संसदीय लोकतंत्र में भागीदार हैं और संवैधानिक रूप से प्रदत्त अपने लोकतांत्रिक अधिकारों को वे इतनी आसानी से नहीं छोड़ने वाले इसके अलावा भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश पर किसी एकरूपतावादी, अधिनायक सत्ता को थोपना आग से खेलने जैसा है!

राजनीति एक गतिशील प्रक्रिया है जो नेता कभी अपराजेय लगते थे, वे भी जनता के आक्रोश के सामने ढह सकते हैं। भला कौन सोच सकता था कि 1971 में पाकिस्तान से युद्ध जीतने और बांग्लादेश के निर्माण में मदद करने के बाद, संसद में पूर्ण बहुमत वाली सरकार की नेत्री और 'दुर्गा' का अवतार कहलाई इंदिरा गांधी को 1975 आते-आते सत्ता में बने रहने के लिए आपातकाल की घोषणा करनी पड़ेगी। और जब 1977 में उन्होंने आपातकाल को समाप्त किया, तो उनकी पार्टी को लोगों ने बाहर का रास्ता दिखा दिया।

या राजीव गांधी का ही उदाहरण लें। 1984 में, 400 से अधिक सीटों के पूर्ण बहुमत के साथ उन्हें जैसा ऐतिहासिक जनादेश जीता, वैसा न तो उनकी मां इंदिरा और न ही नाना नेहरू को हासिल हुआ था। वे युवा, सुदर्शन और अपराजेय लगते थे। तब भाजपा दो सीटों पर सिमटकर रह गई थी। लेकिन यही राजीव 1989 तक आते-आते सत्ता में कायम रहने के लिए संघर्ष करने लगे थे, और आखिरकार वे चुनाव हार गए। राजनीति में, नए चेहरे और नैरेटिव लगातार सामने आते हैं, जो लोगों को प्रभावित करते हैं। हमें मिर्जा गालिब की इस सख्त चेतावनी को याद रखना चाहिए 'हर बुलंदी के नसीबों में है पस्ती एक दिन ।'

न्यूज18 कॉन्क्लेव में भाजपा के वरिष्ठ नेता राम माधव से हिंदुत्व की प्रकृति पर मेरी बातचीत हो रही थी। मैं माधव की बौद्धिकता की सराहना करता हूं। जब उन्होंने कहा कि हिंदुत्व, हिंदू धर्म में आस्था के समान है, तो मेरी उनसे कोई असहमति नहीं थी, बशर्ते हिंदुत्व से उनका आशय हिंदू धर्म के मूलभूत गुणों के सार के

रूप में हो। ये गुण हैं दृष्टि बहुलता, दार्शनिक गम्भीरता और असहमतियों का स्वीकार। लेकिन जब हिंदुत्व का इस्तेमाल समाज में नफरत, कट्टरता और धार्मिक विभाजन पैदा करने के लिए एक राजनीतिक उपकरण के रूप में किया जाता है, तो इसे सनातन धर्म के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है। यदि हिंदुत्व, हिंदू मत की भव्यता का अवमूल्यन करके उसे राजनीतिक लाभ का साधन बनाता हो, तो इसे हिंदू धर्म का पर्याय नहीं माना जा सकता है। यदि हिंदुत्व के स्व-नियुक्त 'ठेकेदारों को लगने लगता है कि हिंदुओं को कैसे व्यवहार करना है, कैसे पूजा करनी है, क्या पहनना है, क्या खाना है,

क्या पीना है- यह सब बताना उनका अधिकार है और अगर पितृसत्तात्मक रूढ़िवादिता से प्रेरित होकर वे महिलाओं से एक पवित्र नारी' की अपनी धारणाओं के अनुरूप व्यवहार करने को कहने लगें, तो यह वो हिंदू धर्म नहीं हो सकता, जिसका पालन अधिकांश हिंदू करते हैं। हिंदू सभ्यता इतनी सदियों से शास्त्रार्थ के बूते ही टिकी हुई है। इस सभ्य-संवाद को हमें जारी रहने देना चाहिए।

दैनिक जागरण

Date:30-03-24

छात्रों के लिए बोझ बनी शिक्षा

सृजन पाल सिंह, (पूर्व राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम के सलाहकार रहे लेखक कलाम सेंटर के सीईओ हैं)

राजस्थान के कोटा शहर में मेडिकल और इंजीनियरिंग परीक्षा की तैयारी कर रहे छात्रों के आत्महत्या करने की खबरें थम नहीं रहीं। पिछले दिनों एक दिन के अंतराल से दो छात्रों के आत्महत्या करने की खबर आई। कोटा में इस वर्ष अब तक आठ विद्यार्थी अपनी जान दे चुके हैं। 16 साल के ऐसे ही एक लड़के ने आत्महत्या करने के पहले एक नोट छोड़ा, जिसमें लिखा था, 'सारी पापा, आइआइटी नहीं हो पाएगा।' हम नियमित रूप से स्कूली बच्चों, प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करने वाले अभ्यर्थियों और यहां तक कि आइआइटी जैसे शिक्षण संस्थानों में ऐसी घटनाओं के विषय में सुनते रहते हैं, जहां दबाव से निपटने में मुश्किलों का सामना करने के कारण छात्र अपनी जीवनलीला समाप्त कर लेते हैं। नए भारत में बुझते इन युवा दीपकों से अधिक निराशाजनक और कुछ नहीं हो सकता।

हालिया आंकड़ों के अनुसार एक साल में 1,70,000 से अधिक भारतीयों ने आत्महत्या की। वर्ष 2022 में प्रति एक लाख जनसंख्या पर आत्महत्या की दर बढ़कर 12.4 हो गई है। आत्महत्या के मामले में यह अभी तक की सबसे ऊंची दर है। भारत की आत्महत्या दर वैश्विक दर से 20 प्रतिशत अधिक है। भारत में आत्महत्याएं अस्वाभाविक मृत्यु का सबसे बड़ा कारण हैं।
आत्महत्या से होने वाली जनहानि सड़क दुर्घटनाओं में जान गंवाने वालों से भी छह गुना अधिक है। और भी चिंताजनक बात यह है कि भारत की युवा पीढ़ी जीवन के दबाव को सहने में भारी कठिनाई महसूस कर रही है। हर वर्ष आत्महत्या की मनोवृत्ति ने 10,000 से अधिक ऐसे लोगों को अपनी चपेट में लिया, जिनकी आयु 18 वर्ष से कम रही। यह भी उल्लेखनीय है कि देश में आत्महत्या करने वालों में लगभग 70,000 की आयु 30 वर्ष से कम थी।

भारतीय युवाओं को आत्महत्या करने के लिए आखिर क्या मजबूर करता है? इसे समझना और इसका निवारण उस देश के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, जहां दुनिया की सबसे बड़ी युवा आबादी निवास करती है। सबसे पहले हमें यह समझना

होगा कि भारतीय युवा विशेषकर किशोर भारी शैक्षणिक दबाव से गुजरते हैं। हम एक ऐसी शिक्षा प्रणाली में विकसित हो गए हैं, जहां 99 प्रतिशत अंक प्राप्त करना भी किसी छात्र को श्रेष्ठ कालेजों में प्रवेश दिलाने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता।

हाल में मैंने छठी कक्षा के छात्रों के लिए सिविल सेवा परीक्षा की कोचिंग के विज्ञापन देखे। जिस उम्र में बच्चों को सपने देखने चाहिए, हम उन्हें प्रतियोगी परीक्षाओं की राह पर धकेल दे रहे हैं। नौवीं कक्षा का बच्चा अक्सर इस बात से परेशान रहता है कि हर रिश्तेदार और परिचित उसे मिलते ही यह कहकर एक प्रकार से डराएगा कि 'अगले साल बोर्ड परीक्षा है!' ऐसी व्यवस्था में शिक्षा कभी न खत्म होने वाला बोझ बन जाती है और इस प्रक्रिया में ज्ञान अर्जित करने की यात्रा का स्वाभाविक आनंद भी समाप्त हो जाता है।

यह सब तब है जब यह सत्य किसी से छिपा नहीं कि जीवन की सफलता किसी एक परीक्षा पर निर्भर नहीं करती। इस विकराल होती समस्या का समाधान खोजें तो हमें अपनी उस व्यवस्था को बदलना होगा, जहां दो-तीन घंटे की परीक्षा किसी युवा की क्षमता को आंकने का इकलौता पैमाना है। हमें एक ऐसी संस्कृति पोषित करने की आवश्यकता है, जहां ज्ञान को समझना, आनंद लेना और जीवन में उसे उपयोग में लाना अधिक महत्वपूर्ण है, न कि तथ्यों और आंकड़ों को याद रखना।

हमें भारत के टीयर-2 कालेजों को बेहतर बनाने में निवेश करने की जरूरत है, ताकि हमेशा 'टाप' करने का दबाव कम हो। हम एक ऐसे परीक्षण तंत्र का पोषण करें, जहां शैक्षणिक अंकों के अलावा, खेल, नेतृत्व, सामाजिक कार्य, संगीत, नवाचार और कला भी कालेजों और प्रतिस्पर्धी परीक्षाओं के लिए मूल्यांकन-चयन सूची को अंतिम रूप देने में एक कारक बनें।

समस्या का एक नया उभरता पहलू है इंटरनेट मीडिया का बेलगाम विस्तार। इंटरनेट मीडिया निरंतर युवाओं को महंगी वस्तुओं का उपभोग और नवीनतम गैजेट रखने के लिए उकसा रहा है। विडंबना यह है कि माता-पिता ही इस प्रवृत्ति को पनपने दे रहे हैं। इंटरनेट मीडिया के माध्यमों से युवाओं में अजीब तरह की होड़ उत्पन्न हुई है। वे अपनी तथाकथित उपलब्धियों का दिखावा करने में लग जाते हैं। वे वस्तुओं से लेकर अपने सैर-सपाटे की गतिविधियों का बखान करते हैं, जिससे कई दूसरों बच्चों में हीन भावना उत्पन्न होती है।

कई बच्चे तो अनैतिक साधनों का सहारा भी लेने लगते हैं। कुछ महीने पहले की बात है कि एक स्कूल के पुरस्कार वितरण में मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मंच पर पुरस्कार लेने आने वाला लगभग हर बच्चा 40-50 हजार रुपये मूल्य वाली स्मार्टवाच पहने हुए था। इसने मुझे लखनऊ में मेरी स्कूली शिक्षा की याद दिला दी, जहां मेरी प्रधानाध्यापिका ने समानता एवं विनम्रता को बढ़ावा देने के लिए महंगे और फैंसी स्कूल बैग पर प्रतिबंध लगा दिया था। बच्चों को सिखाया जाना चाहिए कि सच्चा धन ज्ञान में है। छात्रों के बीच इस तरह के गैजेट एवं ऐशो-आराम की वस्तुओं की होड़ को घटाने के सक्रिय प्रयास करने होंगे।

भारत में मानसिक परामर्श के लिए उचित ढांचे का अभाव भी एक बड़ी समस्या है। न केवल हमारे पास प्रशिक्षित और प्रमाणित मनोवैज्ञानिकों की कमी है, बल्कि हम स्वघोषित परामर्शदाताओं का चलन भी देख रहे हैं, जो अक्सर लाभ से अधिक नुकसान पहुंचाते हैं। हम मानसिक समस्याओं और अवसाद को समझ नहीं पाते और फिर ऐसी स्थिति के लिए मदद मांगने में संकोच भी करते हैं। पुरुषों के मामले में यह विशेष रूप से प्रत्यक्ष दिखता है।

उल्लेखनीय है कि भारत में पुरुषों की आत्महत्याएं महिलाओं की तुलना में दोगुनी हैं। यदि भारत को अपनी युवा आबादी से लाभ उठाना है तो हमें युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य और आत्महत्या के मुद्दे को परिवारों, स्कूलों, कालेजों और नीतिगत स्तर पर उठाकर उन पर तत्काल ध्यान देना होगा। ठोस कदम उठाकर, शोध और अंतराष्ट्रीय मिसालों से प्रेरित होकर मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी चुनौतियों से लड़ना होगा और युद्धस्तर पर मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी भ्रांतियों को मिटाना होगा। जहां शारीरिक स्वास्थ्य के लिए हम बजट में प्रविधान करते हैं, उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी एकाग्रता से प्रयास करना होगा।

राष्ट्रीय सहारा

Date:30-03-24

साख बचाने की जवाबदेही

संपादकीय

सर्वोच्च न्यायालय के छह सौ अधिवक्ताओं का पत्र काफी संवेदनशील है। जो प्रधानमंत्री और कांग्रेस नेता के हस्तक्षेप से बहसतलब हो गया है। सात पेज के पत्र में अधिवक्ताओं के 'एक समूह' द्वारा सर्वोच्च अदालत से मनमाफिक फैसले के लिए संस्था के भीतर और बाहर न्यायाधीश पर दबाव बनाने का आरोप लगाया गया है। यह समूह सुनवाई एवं निर्णयों में निहित स्वार्थों की पूर्ति न होने पर न्यायपालिका की स्वतंत्रता एवं निष्पक्षता पर ही सवाल उठाना लगता है। भ्रष्टाचार के ज्यादातर मामले में यह होता है। पूर्व मुख्य न्यायाधीश और राज्य सभा सांसद रंजन गोगोई ने भी अपनी किताब में इसकी पहचान करते हुए बताया है कि कैसे इस समूह ने न्यायिक स्वतंत्रता पर सवाल उठाने और न्यायाधीशों पर व्यक्तिगत हमले शुरू करने के लिए सार्वजनिक भाषणों और चुनिंदा एजेंडा- आधारित प्रकाशनों का इस्तेमाल किया, जो गलत सूचना पर आधारित थे । इस समूह के खिलाफ कदम उठाने के लिए मुख्य न्यायाधीश डीवाई चंद्रचूड़ से अपील की गई है। ऐसा रास्ता क्या हो सकता है? क्या उन अधिवक्ताओं पर कार्रवाई होगी या उनके व्यवहार को नियंत्रित करने वाली कोई लक्ष्मण रेखा तय होगी? अब तक देखने को यही मिला है कि कार्रवाई क्षमा याचना' कराने और उसको 'स्वीकार करने में अंतिम गति को प्राप्त हो जाती है। नरेन्द्र मोदी ने देश में एक 'प्रतिबद्ध न्यायपालिका' बनाने की कांग्रेस की पचास दशकीय प्रवृत्तियों की आलोचना करते हुए उसकी संवैधानिक स्वायत्तता के अवमूल्यन का आरोप लगाया है। हालांकि मल्लिकार्जुन खरगे ने मोदी राज में संस्थाओं के ह्रासमान होने के आरोपों के बीच हाईकोर्ट के एक न्यायाधीश को उनके इस्तीफे के बाद तुरंत बाद भाजपा प्रत्याशी बनाने का नजीर दिया है। दरअसल, यह प्रसंग न्याय को अपनी तरह से देखने - दिखाने की सत्ता की स्वाभाविक लालसा का है, जो अनुपातिक रूप से कहीं कम या ज्यादा हो सकता है। गोगोई ने उस दबाव समूह के साथ-साथ सत्ता के दबाव की बात भी मानी है। पर लंबे राज में कांग्रेस के खाते में वैसे व्यवहारों की सूची लंबी है। खुद न्यायाधीश ही तीन साल के कूलिंग पीरियड तक रुकने को तैयार नहीं हैं। न्यायपालिका की निष्पक्षता स्वतंत्रता बनाए रखने या इसका विश्वसनीय संदेश देश को देने का काम सर्वोच्च अदालत और उनके न्यायाधीश का ही है।

Date:30-03-24

विचारशील समझौता

संपादकीय

पूर्वी लद्दाख में लंबे समय से जारी सीमा विवाद के बीच भारत और चीन शीर्ष राजनयिकों ने ताजा दौर की बातचीत की। दोनों पक्षों ने भारत-चीन सीमा मामलों पर परामर्श व समन्वय के लिए कार्यतंत्र व पूरी तरह सैनिकों को हटाने के लिए बीजिंग में यह बैठक की। विदेश मंत्रालय के संयुक्त सचिव (पूर्वी एशिया) ने भारतीय दल का नेतृत्व किया। चीनी विदेश मंत्रालय के सीमा व महासागरीय विभाग के महानिदेशक इसमें शामिल थे। चीन की तरफ से जारी बयान में कहा गया, दोनों पक्षों ने चीन-भारत सीमा क्षेत्र में स्थिति को नियंत्रण व प्रबंधन की दिशा में हुई प्रगति का सकारात्मक मूल्यांकन किया। इसमें अगले चरण के लिए स्पष्ट व गहन विचारों का आदान-प्रदान होने की भी बात की गई। झील क्षेत्र में हिंसक झड़प के बाद 5 मई 2020 को पूर्वी लद्दाख सीमा पर गतिरोध पैदा हो गया था। गलवान घाटी की झड़प के बाद जून 2020 में दोनों देशों के बीच सबसे गंभीर सैन्य संघर्ष हुआ, जिसमें बीस भारतीय सैनिक मारे गए थे। अरुणाचल के तवांग में हुई झड़प में 2022 में दोनों तरफ के सैनिक घायल हुए थे। भारत-चीन 3,488 किलोमीटर लंबी सीमा साझा करते हैं। जम्मू- कश्मीर, हिमाचल, उत्तराखंड, सिक्किम व अरुणाचल प्रदेश से ये गुजरती हैं। हैरत की बात तो यह है कि दोनों देशों के बीच अब तक पूरी तरह सीमांकन नहीं हुआ है। जैसा कि भारत अक्साई चिन पर अपना दावा पेश करता है, जबकि यह चीन के नियंत्रण में है। अरुणाचल प्रदेश को चीन तिब्बत का हिस्सा मानता है तथा मैकमोहन रेखा को भी नहीं मानता। अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए गलवान घाटी पर चीन पहले ही तमाम सैन्य निर्माण चुका है, जिसे भारत सरकार गैर-कानूनी मानती है। बावजूद इसके यदि सीमा पर शांति को लेकर इस तरह के राजनयिक कदम उठाए जा रहे हैं, तो उनका खुले मन से स्वागत होना चाहिए। वैश्विक तौर पर भारत की स्थिति पहले के मुकाबले बेहतर होती जा रही है। ऐसे में अपने पड़ोसी मुल्कों से अच्छे संबंध बनाकर हमें अपनी बदली विदेश नीति का परिचय देने में कोई अड़चन नहीं होनी चाहिए। यूं भी चीन साथ हमारे व्यापारिक संबंध अच्छे हैं। विवादों को समय रहते निपटाना और सीमाओं पर शांति बनाए रखने को प्राथमिकता पर रखना ही विचारशीलता कहलाता है।